अवमानना और विज्ञान की प्रगति

पी. बालाराम

अश्रद्धा या निरादर अथवा अवमानना एक अप्रचलित शब्द है। भारत में भी यह एक असामान्य व्यक्तिगत विशेषता मानी जाती है। हाल ही में साइंस पत्रिका की इस संपादकीय घोषणा ने मेरा ध्यान आकर्षित किया : 'अवमानना और भारतीय विज्ञान।' भारत के बेहद जाने-माने, प्रभावी और स्पष्टभाषी वैज्ञानिकों में से एक आर.ए. मशेलकर ने देश में विज्ञान को आगे बढ़ाने के लिए अपने उत्तेजक विचार पेश करने के लिए विज्ञान के एक प्रमुख अमेरीकी जर्नल को चुना (साइंस, 2010)। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश में विज्ञान को नौकरशाही और टुच्चेपन की बेड़ियों से मुक्त करने में अवमानना मुख्य भूमिका निभा सकती है। शब्दकोश पर एक सरसरी निगाह डालने से पता चलता है कि इस शब्द का इस्तेमाल किसी सत्ता की अवहेलना करने के संदर्भ में किया जाता है और इसे अक्सर हास्य बोध के साथ प्रचलित विवेक का तिरस्कार करने से सम्बंधित माना जाता है।

नोबेल विजेता रिचर्ड फाइनमैन का मानना है कि विज्ञान में रचनात्मकता के लिए अवमानना या अवहेलना बेहद ज़रूरी है।

साइंस का यह संपादकीय लिखता है, "नोबेल विजेता रिचर्ड फाइनमैन का मानना है कि विज्ञान में रचनात्मकता के लिए अवमानना या अवहेलना बेहद ज़रूरी है।" विद्रोही तेवरों को अक्सर रचनात्मक लोगों की विशेषता माना जाता है। अपने निबंध में मशेलकर फ्रीमैन डायसन की किताब *दी साइंटिस्ट ऐज़ रेबेल* की ओर ध्यान खींचते हैं। डायसन के निबंधों के इस संकलन में विभिन्न विषय शामिल हैं, जिनमें अधिकांश पुस्तक समीक्षाएं हैं। लेकिन इसका शीर्षक उस निबंध से लिया गया है जिसमें डायसन तर्क देते हैं कि "विज्ञान सभी सभ्यताओं में उन मुक्त भावनाओं का गठबंधन है जो प्रत्येक सभ्यता में लोगों पर थोपी गई स्थानीय तानाशाही का विरोध करती हैं।" डायसन को उद्धृत करते हुए मशेलकर लिखते हैं, "भारत के महान भौतिक शास्त्रियों रमन, बोस और साहा के लिए विज्ञान दोहरा विद्रोह था। पहला, अंग्रेज़ों के प्रभुत्व के खिलाफ और दूसरा, हिंदुत्व के भाग्यवादी नीतिशास्त्र के विरुद्ध।' पहले में तो कोई संदेह नहीं है, लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि दूसरी बात को लेकर कई लोग सवाल उठाएंगे। विद्रोह शब्द पर नज़दीक से ध्यान देने की ज़रूरत है, जिसका इस्तेमाल डायसन ने बेहद विशेष संदर्भ में किया है। उनके शब्दों में : "विज्ञान कला का एक प्रकार है, न कि दर्शन की पद्धति। विज्ञान में नए आविष्कार आम तौर पर नए औज़ारों की देन होते हैं, बनिस्बत नए सिद्धांतों की। यदि हम विज्ञान को एकल दार्शनिक विचार में संकुचित करने की कोशिश करते हैं तो हम प्रोक्रस्टीज़ की तरह होंगे जो अपने उन मेहमानों के पैर काट देता था जो बिस्तर पर नहीं समाते थे। विज्ञान तभी फलता-फूलता है जब वह सभी उपलब्ध संसाधनों व औज़ारों का इस्तेमाल करता है और इस पूर्वकल्पित विचार से प्रभावित होने से बचता है कि विज्ञान को क्या होना चाहिए।" यूनानी पौराणिक कथाओं में प्रोक्रस्टीज़ एक ऐसा घातक चरित्र था जो अपने उन मेहमानों के उतने पैर काट देता था, जितने बिस्तर से बाहर निकले होते थे। प्रोक्रस्टीज़नुमा समाधान आंकड़ों या सूचनाओं को छांटकर पहले से कल्पित संरचना में फिट करने की अवांछित प्रथा है।

रिचर्ड फाइनमैन की सार्वजनिक छवि एक उत्कृष्ट और विद्रोही वैज्ञानिक की रही है। उनके विद्यार्थी डायसन ने उन्हें विद्रोही भावनाओं वाले ऐसे शख्स के रूप में निरूपित किया है जिसने बाहर की दुनिया के आनंददायक साहसिक कार्यों और विज्ञान के प्रति गंभीर समर्पण का मिश्रण किया है। बीसवीं सदी के भौतिक शास्त्र की दो

महान हस्तियों की कार्यशैली का डायसन द्वारा किया गया विश्लेषण बहुत ही प्रभावित करने वाला है : "महान वैज्ञानिक दो प्रकार के होते हैं जिन्हें सातवीं सदी के कवि आर्किलोकस लोमड़ी और साही के रूप में निरूपित करते हैं। लोमड़ियों के पास कई तरकीबें होती हैं, लेकिन साही के पास केवल एक होती है। लोमड़ियों को हर चीज़ में दिलचस्पी होती है और वे एक समस्या का समाधान करने के बाद आसानी से दूसरी समस्या का सामना करने को तैयार हो जाती हैं। साही की रुचि कुछ ही समस्याओं में रहती है जिन्हें वे बुनियादी समस्याएं मानती हैं और वे एक ही समस्या पर वर्षों या दशकों तक अटकी रहती हैं। अधिकांश बड़ी खोज साही द्वारा, जबकि अधिकांश छोटी खोजें लोमड़ियों द्वारा की गई हैं। स्वस्थ विकास के लिए विज्ञान को लोमड़ियों और साही दोनों की ज़रूरत है। किसी चीज़ की गहराई में जाने के लिए साही चाहिए और हमारी अद्भुत दुनिया के जटिल विस्तारों की पड़ताल करने के लिए लोमड़ियां। अल्बर्ट आइंस्टाइन साही थे, जबकि रिचर्ड फाइनमैन लोमड़ी।"

हाल्डेन ने धार्मिक रूढ़िवाद के बारे में कहा था, "रूढ़िवादी को उस व्यक्ति से भय नहीं होना चाहिए जिसका विवेक अपने जज़बातों का सेवक है, लेकिन उसे उस व्यक्ति से सतर्क रहना चाहिए जिसका विवेक ही उसका सबसे बड़ा जज़बात हो गया है।"

फाइनमैन के पत्रों के संकलन की समीक्षा करते हुए डायसन उनके द्वारा एक पूर्व छात्र को लिखे पत्र को उद्धृत करते हैं, "मैंने अनगिनत ऐसी समस्याओं पर कार्य किया है जिन्हें तुम बहुत छोटी बताओगे, लेकिन मुझे उनमें मज़ा आया और अच्छा महसूस हुआ क्योंकि कभी-कभार उनमें मुझे आंशिक तौर पर सफलता भी मिली... यदि हम वाकई कुछ करना चाहते हैं तो कोई समस्या बहुत छोटी या बहुत तुच्छ नहीं है।" यह भावना उन बहुसंख्य अनुसंधानकर्ताओं को प्रेरित करेगी जो 'बड़ी चुनौतियों' पर कार्य नहीं करते। फाइनमैन की यह सलाह कि वैज्ञानिकों को अपने कार्य में मज़ा आना चाहिए, एक मायने में कई प्रसिद्ध और सफल वैज्ञानिकों के उस विचार के खिलाफ है कि 'छोटी-छोटी' समस्याओं पर शोध करने का कोई मतलब नहीं होता। डायसन उस तथ्य की ओर ध्यान खींचते हैं कि 'विद्रोह के रूप में विज्ञान' को सबसे पहले जे.बी.एस. हाल्डेन ने 1923 में कैम्ब्रिज में सोसाइटी ऑफ हेरेटिक्स में दिए एक व्याख्यान में प्रस्तुत किया था। हाल्डेन ने धार्मिक रूढ़िवाद के बारे में कहा था, "रूढ़िवादी को उस व्यक्ति से भय नहीं होना चाहिए जिसका विवेक अपने जज़बातों का सेवक है, लेकिन उसे उस व्यक्ति से सतर्क रहना चाहिए जिसका विवेक ही उसका सबसे बड़ा जज़बात हो गया है।"

डायसन के निबंध से मैं इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाया कि उन्होंने जिस संदर्भ में 'विद्रोह' के बारे में चर्चा की है और मशेलकर के संपादकीय में इस्तेमाल किया गया 'अवमानना' शब्द एक ही हैं। हाल्डेन ने सबसे पहले सुझाया था कि भारत में विज्ञान में सुधार के लिए अवमानना की एक अहम भूमिका है। उन्होंने अपने विशिष्ट लहजे में अशिष्टता के महत्व पर ज़ोर देते हुए कहा था, "मैं यह समझ चुका हूं कि भारत में विज्ञान के विकास की गति इतनी धीमी क्यों है। इसका कारण यह नहीं है कि भारतीय मूर्ख या आलसी हैं, बल्कि ऐसा इसलिए है क्योंकि वे बहुत ज्यादा ही शिष्ट होते हैं।" हाल्डेन अपने आकलन में काफी कड़ी टिप्पणियां देते थे। उन्होंने पी.सी. महलनोबिस की बार-बार की यात्राओं पर यह कहते हुए नाराज़गी जताई थी कि, "हमारे निदेशक की यात्राएं एक नवीन निरुद्देश्य बीमारी को परिभाषित करती हैं।"

यहां सवाल उठ सकता है कि आखिर भारत में विज्ञान के कायाकल्प के लिए महत्वपूर्ण घटक के रूप में अवमानना को किस संदर्भ में आगे बढ़ाया जाना चाहिए? मशेलकर कहते हैं कि दुर्भाग्य से आज भारतीय समाज में अवमानना तत्व का अभाव है और इसकी वजह है वह पारंपरिक प्रवृत्ति जो अवमानना की निंदा करती है। फिर वे उन कारणों को पेश करते हैं जो रचनात्मकता का गला घोट देते हैं - सवाल पूछने पर प्रतिबंध लगाने वाली

पारंपरिक विरासत, मौलिकता का दमन करने वाली शिक्षा प्रणाली और अपने रूढ़िवादी अभेद्य ढांचे में ही काम करने वाली नौकरशाही। उस प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए जिससे वे भी भलीभांति अवगत हैं, मशेलकर दो प्रधानमंत्रियों द्वारा विज्ञान कांग्रेस में दिए गए भाषणों का उल्लेख करते हैं।

वर्ष 2001 में अटल बिहारी वाजपेयी और 2010 में मनमोहन सिंह अपने भाषणों में नौकरशाही के शिकंजे पर खेद जताते हैं। मशेलकर लिखते हैं, "अफसोस इस बात का है कि इतने सालों में कुछ नहीं बदला।" हालांकि अपने अंतिम पैराग्राफ में वे कुछ उम्मीद भी जताते हैं कि माहौल बदलने को है। वे संस्थानों की संख्या में नाटकीय बढ़ोतरी के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव पर प्रकाश डालते हैं और कहते हैं कि नई प्रयोगशालाओं में "नवाचार की नई संस्कृति विकसित हो रही है।"

उनके मुताबिक उम्मीदों का यह उफान इस तथ्य से भी पैदा हो रहा है कि "विदेशी कंपनियां 760 अनुसंधान एवं विकास केंद्र स्थापित कर चुकी हैं जिनमें एक लाख 60 हजार शोधकर्ता कार्य कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश वे भारतीय हैं जो विदेशों से स्वदेश लौटे हैं और अपने साथ नवाचार और कार्य की नई शैली लाए हैं। इस प्रकार ब्रेन ड्रेन विपरीत दिशा में हो चला है।" फिर वे अवमानना की भावना, जो भारतीय उद्योग जगत में व्याप्त हो चुकी है, का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि "हाल ही में टाटा द्वारा दुनिया की सबसे सस्ती कार नैनो की लांचिंग साहस की नई भावना का प्रतीक है।"

मशेलकर का संपादकीय पढ़ने के बाद मेरा मानना है कि वे जिस अवमानना की बात कर रहे हैं, उसका फ्रीमैन डायसन के 'विद्रोह' या हाल्डेन और फाइनमैन की 'अशिष्टता' से कोई लेना-देना नहीं है। विदेशी कंपनियों द्वारा स्थापित की जा रही कई नई औद्योगिक अनुसंधान प्रयोगशालाओं में अवमानना को प्रेरक घटक मानना मुश्किल है। जो भी बड़ी प्रयोगशालाएं हैं, वे बहुत ही योजना-बद्ध, संगठित और ऐसे समर्थ संस्थान के रूप में कार्य करती हैं जिन्हें अपनी मूल कंपनियों से स्पष्ट आदेश व निर्देश मिले होते हैं। साप्ताहिक (और कभी-कभार दैनिक) वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए होने वाली निगरानी में अवमानना का मौका शायद ही कभी मिलता है।

विज्ञान अब बेहद संगठित, प्रोफेशनल और बहुराष्ट्रीय गतिविधि बन गया है। प्रतिभाशाली शौकिया शोधकर्ताओं का ज़माना बीत चुका है। यहीं पर मैं यह भी कहूंगा कि डायसन के संकलन में शौकिया शोधकर्ताओं की प्रशंसा में भी एक निबंध शामिल है। डायसन लिखते हैं, "उन्नीसवीं सदी में माइकल फैराडे और मैक्सवेल जैसे प्रोफेशनल सामान्य थे और चार्ल्स डार्विन और ग्रेगर मेंडल जैसे शौकिया अपवाद थे।" आज के आधुनिक मानदंडों के आधार पर हम इन सभी हस्तियों पर 'अवमानी एमेच्योर' का ठप्पा लगा सकते हैं। आज की कई विख्यात विज्ञान प्रयोगशालाओं में भी अवमानना जैसा गुण आसानी से नहीं मिलेगा। प्रतिस्पर्धा, अच्छा कार्य करने का सतत् दबाव और अनुसंधान के लिए सहयोग की लगातार ज़रूरत ऐसे तत्व हैं जो अवमानना को प्रोत्साहित नहीं करते। किस्मत से ऐसी कई समस्याएं तकनीकी औज़ारों की शक्ति के आगे नतमस्तक हो जाएंगी।

अवमानना को प्रोत्साहन से हमारी प्रयोगशालाओं में ताज़ा हवा बह सकती है, लेकिन इसके साथ ही कुछ और भी तत्व हैं जो बदलाव के लिए बेहद ज़रूरी हैं। मशेलकर इन शब्दों के साथ अपना संपादकीय समाप्त करते हैं : "यदि भारत अवमानना की उस भावना को पैदा कर सके जिसे फाइनमैन ने अनुमोदित किया था, तो भारतीय विज्ञान निश्चित रूप से 21वीं सदी के कई रमन पैदा कर सकेगा। निस्संदेह अवमानना से भी ज्यादा ज़रूरत सफलताओं की होगी। इसके लिए पेशेवर नज़रिया, सहयोग व सहकार के गुणों की स्पष्ट समझ और कार्य-प्रदर्शन को मापने व आकलन करने की एक ईमानदार व तार्किक प्रणाली की आवश्यकता होगी। साथ ही प्रतिबद्धता, उत्साह और लचीलेपन की भी ज़रूरत होगी।" ***(स्रोत फीचर्स)***